'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ७३ } वाराणसी, शनिवार, २० जून, १९५९ { पचीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन — पिपलोद (पंचमहाल) २१-५-'५९

सुधारवाद क्रान्तिवाद का जानी दुश्मन

यह पंचमहाल जिला ग्रामदान के लिए अत्यन्त अनुकूल क्षेत्र है। इससे अधिक अनुकूल क्षेत्र कदाचित् ही कोई हो सकता है। यहाँ ठक्कर बापा की लगभग तीस-चालीस साल की तपश्चर्या है। ऐसी तपश्चर्या जहाँ व्याप्त हो, उस वातावरण से लाभ न उठा पायें तो वह हमारी कुशलता की कमी ही कही जायगी। वह श्रद्धा और प्रतिभा की भी कमी मानी जायगी। इस तरह यह कुशलता, श्रद्धा और प्रतिभा—तीनों का अभाव कहा जायगा। इसलिए मैं अपने सेवकों से कहना चाहता हूँ कि वे संकोच त्याग-कर सीधे ग्रामदान ही माँगने के लिए निकल पड़ें। अगर हम यह समझते हों कि ग्रामदान माँगने के लिए जाने पर कदाचित् उतनी बड़ी चीज न मिले, इसलिए उससे कुछ कम ही माँगा जाय तो वह ग्रामदान के लिए सीढ़ी न होकर उसके लिए रोड़े ही साबित होगा।

सिद्धियाँ : बीच के रोड़े

यह बात योगशास्त्र में आती है। योगी जब आत्मदर्शन के लिए ध्यानमग्न होता है तो प्रकृति माता सीधा दर्शन कराने के बदले उसे सिद्धियों की ओर ले जाती है। किन्तु तरह-तरह की सिद्धियाँ पाने के बाद वह यह समझकर कि ये भी आत्म-दर्शन की ही सीढ़ियाँ ही हैं, उन्हींसे चिपका रहे तो आत्मदर्शन का खात्मा ही समझ लीजिये। इस तरह सिद्धियाँ आत्मदर्शन के मार्ग में विघ्नरूप होती हैं। योगशास्त्र में यह एक बहुत अच्छी बात बतायी गयी है। पापकार्य मुक्तिकार्य का विरोधी है, यह तो सभी जानते ही हैं। लेकिन कितनी ही बार पुण्य भी मुक्ति के मार्ग में इतना बड़ा रोड़ा बन जाता है कि वह पाप से कम नहीं होता, कारण लोग पाप को तो पाप समझ सकते हैं। लेकिन जब पुण्य सोज्ज्वल रूप धारण कर मानव के सामने खड़ा हो जाता है तो भ्रम पैदा हो जाता है और वह मुक्ति के बदले उसे ही सब कुछ समझ बैठता है। इस तरह बुरी तरह ठगा जाता है।

सुधारवाद और सामाजिक क्रान्ति

कार्ल मार्क्स ने योगशास्त्र की इस बात को ही जरा दूसरे ढंग से कहा है। वे कहते हैं : 'यह सुधारवाद क्रान्तिवाद का जानी दुश्मन है। पहले तो वह उसीके जैसा परिचित और चमत्कारपूर्ण दीखता है। लेकिन वास्तव में घोड़े और गधे में जितना अन्तर होता है, उतना ही उन दोनों में अन्तर है। गधा तो भारवाही है और अश्व वेगवान् प्राणी। क्रान्ति अश्व का दर्शन है, जब कि सुधार भारवाही गधे का दर्शन।' इस तरह उसने बड़ी विलक्षण बात लोगों के समक्ष रखी। लेकिन उसमें भी यही भाव है कि सुधारवाद मुक्तिकार्य में याने क्रान्तिकार्य में विघ्नरूप है। योगशास्त्र में जहाँ मानव की मुक्ति की बात थी, वहीं कार्ल मार्क्स के सामने सामाजिक क्रान्ति की। इसलिए ये बातें दो तरह की दीखती हैं। लेकिन दोनों का रूप एक ही है और वह है अन्तिम साध्य सिद्ध करने की दिशा में सिद्धि और सुधार भी विघ्नरूप होते हैं।

एक अनुभूत उदाहरण

यह बात हम अपने देश की स्वतंत्रता के इतिहास से भली-भाँति समझ सकते हैं। एक जमाना था, जब हमारे देश में अनेक सुधार हुआ करते थे। हमारे नेता बड़ी ही नम्रता से अंग्रेजों से सुधारों की माँग करते थे। दादाभाई नौरोजी ने आरंभ में बड़ी ही नम्रता से अंग्रेजों के समक्ष गरीबों के दुःख रखे और कहा कि देश की यह गरीबी अंग्रेजी राज्य के लिए शोभा नहीं देती। लेकिन इस तरह कहने या ऐसे कुछ सुधार कार्यान्वित करने पर भी देश को सुख-शान्ति नहीं मिली। आखिर उन्हें भी सन् १९०६ में स्वराज्य-प्राप्ति का लक्ष्य घोषित करना पड़ा। आरंभ में वह भी कुछ मुलायम था। लेकिन उतने सुधारों से कुछ होता-जाता न देख, आजिज आकर अन्ततः देश को अंग्रेजों से साफ कहना पड़ा : 'क्विट इण्डिया' (भारत छोड़ो)। तभी राष्ट्र में कुछ प्रकाश प्रकट हुआ। अगर हिन्दुस्तान 'भारत छोड़ो' न कहता तो राष्ट्र में यह चेतना कभी न आती।

ग्रामदान में जरा भी कमी न की जाय

ग्रामदान की भी यही स्थिति है। इसमें जरा भी कमी या मुलामियत नहीं करनी चाहिए, फिर भले ही ग्रामदान हो या न हो। लोगों के सामने साफ-साफ सीधी बात रख देनी चाहिए। स्पष्ट कहना चाहिए कि हिन्दुस्तान के गाँवों और शहरों का संकट तभी टल सकेगा, जब जमीन की मालकियत मिट जायगी। इसके बदले अगर आप कुछ दूसरी, तीसरी बात—यह समझकर

कि इससे लोग धीरे-धीरे ग्रामदान की ओर मुड़ेंगे—लोगों के सामने रखेंगे तो मैं कहता हूँ कि उससे वे धीरे-धीरे ग्रामदान के निकट तो नहीं ही आयेंगे, बल्कि बीच की खाई और भी गहरी होती जायगी।

जमीन का यह काम हवा से होगा

मान लीजिये, मैं कहने लग जाऊँ कि 'ग्रामदान तो अन्तिम ध्येय है, इसलिए अभी आप जमीन ही दें' तो समझ लें कि ग्रामदान वातावरण से ही उठ गया। यह काम है तो जमीन का ही, पर वह होगा हवा से—वातावरण से। जमीनों को बटोर-बटोरकर वह हो नहीं सकता। इसलिए चारों ओर यह हवा फैला दें कि ग्रामदान रामदान है। जैसे राम का नाम लेते समय किसी तरह का संकोच नहीं किया जाता, खुले दिल से रामनाम लेते हैं, वैसे ही बिना संकोच, निडर होकर ग्रामदान का नाम लेना चाहिए। प्रह्लाद ने अपने पिता हिरण्यकशिपु से कहा था—'बाबा! मुझे भगवान का नाम बड़ा प्यारा लगता है। मुझे और किसीकी जरूरत नहीं है।' इसी तरह हमें भी साफ-साफ बोलना चाहिए। लोगों के सामने सत्य को खोलकर रख देना चाहिए। उसमें किसी तरह का संकोच न करना चाहिए।

पहले अपनी माया-ममता छोड़ें

अगर हम माया-ममता रखकर बैठे रहें तो निश्चय ही हमें यह कहने में संकोच हो सकता है। फिर हम लोगों के सामने यह कैसे कह सकते हैं कि आप मालकियत छोड़ें। अतः हमें अपनी माया-ममता छोड़ देनी चाहिए। उसके बगैर यह काम आगे बढ़ ही नहीं सकता। मुझे तो यही लगता है कि मैं तो इस सत्य का जप ही करता रहूँ। इस जप से कदाचित् भूदान देना बन्द हो जाय और कोई ग्रामदान तो करे ही नहीं तो मैं यह कहकर नाचने लगूँगा कि बहुत अच्छा हुआ। भूमिदान भी मैंने ही शुरू किया था। उसमें चालीस-बयालिस लाख एकड़ जमीन मिली और दस साल में उसका वितरण भी हो जायगा। अगर पाँच साल में चालीस लाख की प्राप्ति हो तो पाँच करोड़ का कार्यक्रम पूरा होते-होते तो सारा जमाना ही बीत जायगा। इसलिए यह तो मार्गशोधन था।

भारत में ग्रामदान होना ब्रह्मलिखित

बहुत से लोग मुझसे पूछते थे कि आप १९५७ के बाद क्या करेंगे? लेकिन उसके बाद मुझे क्या सूझेगा, यह मैं उस समय नहीं कह सकता था। पर भगवान ने उससे पहले ही यह सुझा दिया कि सत्तावन के बाद क्रान्ति के लिए, शान्ति और अहिंसा के लिए ही प्रत्येक घर से सम्मति मिलनी चाहिए। यह एक बहुत बड़ा व्यापक कार्यक्रम बन गया। लोगों की सम्मति मिले तो सेवक खड़े हो सकें और फिर ग्रामदान का वातावरण खड़ा हो जाय। जिस तरह रात बीतने के बाद सूर्य का उदय होना सुनिश्चित है, उसी तरह हिन्दुस्तान में ग्रामदान का होना ब्रह्मलिखित ही समझिये। वह टाले टल नहीं सकता।

गाँव आत्मनिर्भर बनें

एक गाँव में ग्रामदान हुआ। वहाँ ग्रामस्वराज्य की स्थापना करने की बात चली। एक भाई ने मुझसे कहा कि 'ग्रामस्वराज्य में तो सारी जमीन ग्रामसभा की हो गयी। फिर इस गाँव में श्रम की शक्ति तो है ही, लेबर तो है ही। लेकिन गाँव को पूँजी की जरूरत पड़े तो उसे कहाँ से लाया जाय? जनता ही जीवन से कुछ काट-कसर करे, तभी कुछ पूँजी खड़ी हो सकती है।' मैंने कहा: ठीक ही तो है। उन्हें ऐसा करना ही चाहिए। इसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं। हम विदेशों से पूँजी लाकर गाँव को स्वराज्य नहीं दिला सकते। फिर भी गाँव का पैसा लूटकर आज जो राज्यसंस्था बनी है, उसका भी गाँव के प्रति कुछ कर्तव्य है ही। उसे भी गाँव के स्वराज्य के लिए कुछ करना ही चाहिए।

अपने लड़कों से यह सूदखोरी

इस पर वे भाई कहने लगे कि सरकार कर्ज अवश्य देती है, लेकिन सूद लेकर देती है। यह सुनकर मुझे कबूल करना होगा कि मैं भीतर गुस्सा हो गया। क्या सरकार अपने लड़कों से सूद लेती होगी? क्या सरकार सूद पर लोगों को रुपये दे, यह उचित कहा जा सकता है? ग्रामोद्योग खड़े करने के लिए पूँजी तो चाहिए ही। सरकार ने भी स्वीकार किया ही है कि गाँव के कच्चे माल का पक्का माल गाँव में ही तैयार होना चाहिए। यह पंचवर्षीय योजना में भी आता है। इसीलिए खादी-ग्रामोद्योग-कमीशन भी बना। फिर भी ऐसे पाप (सूदखोरी) हमारे समाज की रग-रग और खून की एक-एक बूँद में व्याप्त हो गये हैं। हम समझते ही नहीं कि यह पाप है। इस पर हिन्दू और इस्लाम दोनों धर्मों ने प्रहार किया है। मुहम्मद पैगम्बर ने तो इस्लाम धर्म में स्पष्ट कहा है कि 'सूद लेना हराम है। वह तो महापाप है।' उन्होंने कुरान में कहा है—'रे मूर्खो! आप क्या चाहते हैं? संपत्ति बढ़ाना ही न? तो क्या आपकी संपत्ति सूद से बढ़ेगी? अरे, दान दीजिये तो आपकी संपत्ति बढ़ेगी!' लेकिन आज कोई इस पर अमल नहीं करता। सारा व्यापार इसी सूद पर चलता है। हमारा अन्तिम काम यही होगा कि व्यापार को सूद से छुड़ाया जाय। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि सरकार ही आकर सूद ले!

सूद लेना महापाप

जनता से पैसा लेकर सरकार गाँववालों को वही पैसा सूद पर दे, यह कितनी बुरी बात है। जनता को इसके विरोध में आवाज उठानी चाहिए। जैसे टाल्सटाय ने जमीन की मालकियत को महान अनीति कहा है, वैसे ही जनता से सूद लेना भी एक महान पाप है, महान अनीति है। जिस तरह अहिंसा परम धर्म है, उसी तरह सूद लेना परम अधर्म है। हम लोग इसके आदी बन गये हैं कि दो-चार पैसे दें तो भी पूछते हैं कि इसका सूद क्या मिलेगा? यह सूदखोरी लोकतंत्र के लिए, अहिंसा के लिए परम शत्रु है। हमें इसे तोड़ना ही पड़ेगा। जिस तरह जमीन की मालकियत तोड़नी होगी, उसी तरह सूदखोरी भी तोड़नी ही होगी। फिर जनता के साथ सरकार सूदखोरी करे, यह तो बड़ी ही विचित्र बात कही जायगी। मुझे तो इसका पता ही न था। किन्तु आज इस भाई ने भी कहा कि जब तकावी देंगे तो सूद लेंगे ही। जिस गाँव में ग्रामदान हुआ हो, वहाँ बिना सूद के तकावी दी जायगी, यह तय हो गया है। मद्रास-सरकार ने तकावी के लिए २० लाख रुपये कर्ज दिये हैं। मैंने पूछा कि वह सूद लेगी या नहीं? नारायण ने कहा कि नहीं, यह बिना सूद का था। नेताओं की परिषद् में सरकार ने यह स्वीकार कर लिया है कि ग्रामदान 'सुरक्षा का साधन' (डिफेन्स मेजर) है। आज ग्रामदान से पूर्व गाँव को कर्ज देना जरा कठिन भी होता है। पर जब ग्रामदान होकर गाँव-पंचायत के लोग यह संकल्प करेंगे कि हम अपने गाँव के कच्चे माल से गाँव में ही पक्का माल बनायेंगे, हम स्वावलंबी बनेंगे तो वैसी स्थिति में सरकार बिना सूद के कर्ज देने को तैयार हो जायगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

क्रान्ति के लिए मूढ कल्पनाएँ मिटायें

सूद लेने का दोष हम लोगों की हड्डी में समाया हुआ है।

हम एक-दूसरे के यहाँ पैसे रखते हैं, तब भी ऐसा ही करते हैं। सर्व-सेवा-संघ खादीवाले को या खादीवाला ग्रामोद्योगवालों को कर्ज दे तो ऐसा ही चलता था। लेकिन अब यह सूद नहीं लिया जाता। ब्याज की बात अब निकाल दी गयी है। कहा जाता है कि एक संस्था दूसरी संस्था को कर्ज दे, स्वयं उसका उपयोग न कर सके और दूसरी संस्था उसका उपयोग करे। ऐसी स्थिति में क्या उससे सूद लिया जा सकता है? उससे 'नामिनल' (मामूली) नाममात्र के लिए दो-तीन प्रतिशत ब्याज लेने में क्या हर्ज है। लेकिन यह तो व्यर्थ ही बदनाम होने के लिए सूद लिया जाता है। क्या इससे कुछ प्रतिष्ठा होगी? ये सारी मूढ कल्पनाएँ लोगों में फैली हैं। इन्हें बिना मिटाये क्रान्ति नहीं हो सकती। इसके लिए किशोरलाल भाई की 'समूली क्रान्ति' पुस्तक सभी को पढ़नी चाहिए। अप्पासाहब पटवर्धन ने भी ब्याजखोरी पर एक स्वतंत्र पुस्तक लिखी है, जिसका नाम है 'ब्याज-बट्टा'। उसमें सूदखोरी का कड़ा निषेध किया गया है।

एकांगी नीति : धर्म की नाशक

सारांश, जिस तरह जमीन की मालकियत महापाप है, उसी तरह सूदखोरी भी महापाप है। चोरी नहीं करनी चाहिए, यह बात पूर्ण सत्य है, उसी तरह यह भी पूर्ण सत्य है। चोर को तो सजा देते हैं, पर संग्रह करनेवाले को गद्दी पर बैठाकर उसका सम्मान करते हैं, यह गलत है। वास्तव में अस्तेय और अपरिग्रह दोनों मिलकर पूर्ण नीति होती है। ऐसी ही पूर्ण नीति लोगों के सामने रहनी चाहिए। तभी उस पर अमल होगा और तभी धर्म टिक पायेगा। नहीं तो धर्म टिक नहीं सकता। हम लोग अधूरी, अस्पष्ट और एकांगी नीति रखते हैं तो समाज से धर्म को ही निकाल बाहर करते हैं। आज समाज में धर्म नाममात्र के लिए रह गया है। एकांगी नीति ही चल रही है। अगर हम इस पर सीधा प्रहार न करें तो हम भी एकांगी ही रह जायेंगे। इसलिए हमें भूमि की मालकियत और सूदखोरी पर सीधा प्रहार करना चाहिए।

स्वराज्य-पाने की अपेक्षा उसकी रक्षा कठिन

इस पर कोई कहे कि इसे धीरे-धीरे कीजिये, इतनी जल्दबाजी क्यों? तो मैं उससे कहूँगा कि आप मेरी आयु पाँच सौ साल के लिए लिखकर लाइये तो फिर मैं जरा धीरज भी रख सकता हूँ। अब तो बूढ़ा हो गया हूँ। कब जाना पड़ेगा, कह नहीं सकता। इसलिए मुझे जो सत्य बात दीखती है, उसे क्यों न कहूँ? स्वराज्य-प्राप्ति के बाद यदि हम अपने सामने सत्य न रखें तो स्वराज्य खत्म ही हो जायगा। वह टिक न सकेगा। लोग यह मानते हों कि स्वराज्य मिल गया तो हमें ताम्रपत्र मिल गया—यह स्वराज्य कायम के लिए रहेगा तो यह ऐसी बात नहीं है। कितने ही देश कितनी ही बार स्वतंत्र हुए और पुनः गुलाम बन गये। इसलिए स्वराज्य पाने की अपेक्षा उसकी रक्षा करना कठिन काम है। इसमें हमें अपनी सारी योगशक्ति लगा देनी चाहिए। तभी यह काम होगा। इसलिए कृपाकर सुधारवादी न बनें, यही आप सबसे मेरा कहना है। भाइयो! मैंने यह जो कुछ कहा, वह आपको मीठा लगा हो तो मुझे सन्तोष ही है। लेकिन अगर कडुआ लगा हो तो इसे औषधि मानकर प्रेम-भरा घूट पी जायँ, यही आप सबसे मेरी विनती है। ◆◆◆

तालीमी संघ और सर्व-सेवा-संघ की प्रबंध-समिति की बैठक में — जम्मू (कश्मीर) ८-६-'५९

ब्रह्मविद्या के विकास से ही हम टिक सकेंगे

इस वक्त मेरी मानसिक स्थिति जरा कठिन है। मैं अंदर से बहुत बेचैन हूँ। घर छोड़ते समय जितना बेचैन था, उतना ही इस वक्त भी हूँ। उस वक्त बेचैन इसलिए था कि मुझे ब्रह्मविद्या की धुन थी। उसकी प्राप्ति के लिए घर छोड़ना चाहिए, स्कूल छोड़ना चाहिए—ऐसी धुन थी और १९१६ में मैं सब कुछ छोड़कर निकल ही पड़ा। पर अब वह चिन्ता मेरे मन में नहीं रही। उसका समाधान जितना हो सकता था, हो चुका है। अब मुझे बेचैनी यह है कि हमारा कुल सर्वोदय-विचार ब्रह्मविद्या के अभाव में टूट जायगा। हमें हर तरह से सरकारी मदद मिलेगी; पर वह जितनी ज्यादा मिलेगी, सर्वोदय-विचार उतना ही ज्यादा टूटता जायगा। इसका मतलब यह नहीं कि नयी तालीम और दूसरे कामों में सरकार की मदद न मिलनी चाहिए। मदद तो जरूर मिले, बल्कि कुल सरकार ही सर्वोदय की बन जाय, परन्तु सरकार की मदद हजम करने के लिए कुछ अपनी भी तो चीज मजबूत हो। नहीं तो हमें वह मदद जितने परिमाण में मिलती जायगी, उतने ही परिमाण में हम ढीले पड़ते जायेंगे। रचनात्मक कार्य आदि की जितनी बातें इन दिनों सुनता हूँ, उनकी कोई बुनियाद मुझे नहीं दीखती।

कथनी और करनी में ऐक्य कहाँ है?

ईसा मसीह ने कहा था कि 'लव दाय नेबर एज दायसेल्फ'—अपने पड़ोसी पर अपने जैसा ही प्रेम करें। बोलने में तो सहज ही यह बात बोल देते हैं, लेकिन यह चीज क्या है, इस पर सोचते हैं तो मालूम होता है कि वह हममें तब तक नहीं आ सकती, जब तक कि हम अपने मूल स्वरूप में गोता नहीं लगा लेते। ऐसे ही कई कारणों से पड़ोसी पर प्रेम करना लाभदायी होता है, इसलिए वह तो हम करेंगे ही। फिर भी ईसा मसीह ने जो कहा, वह बहुत गहरी बात है। उस दृष्टि से हम अपने को तौलें तो मालूम होगा कि हम ऊपर-ऊपर से समानता की कुछ बातें कर लेते हैं, परन्तु वह बिलकुल नकली साम्य है। जब तक अंदर से यह अनुभूति नहीं होती कि हम सब एक ही हैं—भिन्न-भिन्न आकार दीख पड़ने पर भी एक ही वस्तु हैं, तब तक इस ऊपरी एकता से कुछ नहीं बनेगा। हम प्रार्थना करते हैं, उससे भी कुछ लाभ है। उसमें हम कुछ सुधार भी करते रहते हैं। फिर भी उसमें भक्ति से हृदय द्रवित होने की बात नहीं दीखती। हम बीमारों की सेवा करते हैं—दुनिया में दूसरी जो सेवाएँ चलती हैं, उनके मुकाबले में बहुत अच्छी सेवा करते हैं। किन्तु उसमें भी हमारा एक क्षेत्र बना है। हम क्षेत्र के अनुसार काम करते हैं। हमारी संस्थाएँ इतनी शुष्क बनती हैं कि उनमें कुछ आत्मतत्त्व ही नहीं होता। मनुष्यों में तो होता है, लेकिन क्या संस्थाओं में भी आत्मा होती है? नयी तालीम, खादी, ग्रामोद्योग आदि में सारा ऊपर का 'टेकनिक' होता है। फिर नयी तालीम के साथ क्या जोड़ना चाहिए, आदि के बारे में अनुभव भी बताये जाते हैं। परन्तु ज्ञान और कर्म को बिलकुल एकरूप बनाने की असली बात तो बनती ही नहीं।

दृष्टि में मौलिकता का अभाव

इन सबका तात्पर्य यही है कि बापू ने हमारे सामने कुछ ऐसी

बातें रखी थीं, जो आध्यात्मिक क्षेत्र में ही रखी जा सकती थीं, दूसरे क्षेत्र में नहीं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि पाँच यमों के साथ और कुछ चीजें जोड़कर उन्होंने एकादश व्रत हमारे सामने रखे। यह कल्पना नयी नहीं, पुरानी ही है। लेकिन समाज-सेवा के काम में व्रत जरूरी हैं, यह बात बापू ने ही प्रथम रखी। पहले ये बातें आध्यात्मिक उन्नति के लिए जरूरी मानी जाती थीं। [योगी, साधक आध्यात्मिक विकास करने के लिए यम-नियमों का पालन करते थे। पतंजलि ने ये ही बातें कही हैं। बुद्ध, महावीर, पार्श्वनाथ आदि ने भी इनपर लिखा है। भक्तों ने सारी दुनिया में इनका विकास किया है। परन्तु वे सारी चीजें समाज-सेवा के लिए जरूरी हैं, उनके बिना समाज-सेवा नहीं हो सकती, यह उसूल बापू के आश्रम में ही मैंने प्रथम पाया।] इनमें कोई ऐसी बात नहीं थी, जो मुझमें न हो। बचपन से ही मैं व्रत-पालन की कोशिश करता था। लेकिन वहाँ जो उद्देश्य रखा गया था, वह विशेष बात थी। बापू ने हमारे सामने विश्व-हित के लिए अविरोधी भारत की सेवा का उद्देश्य रखा। उस ध्येय की सिद्धि के लिए हम एकदश व्रत मानते हैं, ऐसा कहा। यह चीज हमने और कहीं नहीं पायी। बापू ने उसके साथ आश्रम का कार्यक्रम और कर्म की विविध शाखाएँ भी हमारे सामने रखीं। इस तरह देश-सेवा के एक मूल उद्देश्य (जो विश्व-हित के अविरोधी—विश्व-हित से जोड़ा हुआ था) के लिए साधकों की जीवन-निष्ठा के तौर पर 'आर्टिकल आफ फेथ', एकादश व्रत और उनके लिए दिनचर्या, उनकी पूर्ति के लिए खेती, गोशाला, खादी आदि का पूरा कार्यक्रम बापू ने हमारे सामने रखा। इन स्थूल प्रवृत्तियों में से जितनी हम उठा सकते हैं, उठाते हैं। विश्व-हित के साथ हमारा विरोध न हो, यह चाहते हैं। परन्तु बीच का जो था, वह गायब हो जाता था। इसका यह मतलब नहीं कि हम सत्य, अहिंसा आदि को मानते ही नहीं हैं। परन्तु वह मूल वस्तु हममें विकसित होती है या नहीं, इसकी तरफ हम ध्यान नहीं देते।

साधना की बुनियाद

बापू और दूसरों के भी जीवन में हम देखते हैं कि उनके सामने कुछ आध्यात्मिक सवाल थे। उन सवालों की तृप्ति हुए बगैर वे आगे नहीं बढ़ते थे। ईसा मसीह की जिन्दगी सिर्फ ३३ साल की थी और उनमें से वे तीन ही साल सिर्फ फिलस्तीन में यानी हिन्दुस्तान के दो-तीन जिलों में घूमे थे। परन्तु आज उनके विचार का असर सारी दुनिया में है। ईसाइयों की संस्थाओं उसकी कीमत नहीं है; परन्तु ईसा मसीह का जो असर है, की बात कर रहा हूँ। पहले ३० साल तक ईसा मसीह ने क्या किया, इसका पता नहीं। कहा जाता है कि वे बढ़ई का काम करते थे। परन्तु उसमें उन्होंने कौन-सी साधना की, सिवा इसके कि उपवास किये और सैतान के साथ उनका मुकाबला हुआ। इससे ज्यादा हमें कुछ भी मालूम नहीं। अब तो यहाँ तक कहा जाता है कि वे तिब्बत तक आये थे। बात यह है कि कुछ बुनियादी आध्यात्मिक सवाल थे, जिन्हें हल करके ही वे निकले। 'लव दाय नेबर एज दायसेल्फ', यह बात बिना अनुभव के नहीं कही जा सकती। उन्होंने शत्रु पर प्यार करने की जो जोरदार बात कही है, वह बिना अनुभव के नहीं कही जा सकती। इसी तरह बुद्ध भगवान ने यज्ञ में हिंसा न हो, यह सवाल लिया और वे बिहार और उत्तर-प्रदेश के १२-१४ जिलों में घूमे, यह तो हम सभी जानते हैं। लेकिन जब उन्होंने तपस्या की थी तो क्या किया, यह किसीको मालूम नहीं। वे कितने मंडलों में गये, कितने पंथों में गये, ध्यान के कितने प्रकार उन्होंने आजमाये और इन सबके परिणामस्वरूप उनके चित्त को कैसी शांति मिली और कैसे यह निर्णय हुआ कि दुनिया में मैत्री और करुणा ये ही दो शब्द हैं—यह सब हम नहीं जानते। आगे की चीज तो जानते हैं, लेकिन पहले क्या हुआ, इस बात को नहीं जानते।

'ईश्वर-दर्शन' का उदाहरण

बापू की आत्म-कथा हम पढ़ते हैं तो कुछ थोड़ी-सी झाँकी मिलती है। रायचंद भाई के साथ उनकी जो चर्चा हुई, वह भी हम जानते हैं। लेकिन उनके मन में आध्यात्मिक शंकाएँ थीं और उनकी निवृत्ति के बिना वे काम में नहीं लगे थे। 'मिस्टिक एक्सपिरिएन्सेस' (आत्मिक अनुभव) के बिना बापू सेवा में नहीं लगे थे। वे कहते थे कि सत्य ईश्वर है। इसलिए लोग समझते थे कि यह वैज्ञानिक बात है। परन्तु वह सिर्फ वैज्ञानिक ही बात नहीं। मैंने उन्हें इस विषय में छेड़ा था। जब खान अब्दुल गफ्फार खाँ की मदद में जाने की बात चल रही थी, तब उन्हें लगा था कि अब वापस आना नहीं होगा। इसलिए उन्होंने मुझसे कहा था कि 'तुम्हारे साथ बातें करना चाहता हूँ।' मैं अकसर उनके पास नहीं जाता था। इसलिए उन्हें लगा कि यह बुलाये बिना नहीं आयेगा। १५ दिनों तक बातें चलती रहीं। पहले दो-तीन दिनों तक तो वे ही सवाल पूछते गये और मैं जवाब देता गया। परन्तु एक दिन उन्हें मैंने ईश्वर के अनुभव के बारे में छेड़ा : "आप 'सत्य ईश्वर है" यह जो कहते हैं, वह ठीक है। परन्तु उपवास के समय आपने कहा था कि 'अंदर से आवाज सुनाई दी', वह क्या बात है ? क्या इसमें जादू है ?" उन्होंने कहा : "हाँ, उसमें कुछ बात है। वह कोई साधारण चीज नहीं। मुझे स्पष्ट आवाज सुनाई दी। जैसे कोई मनुष्य बोलता है, वैसे ही सुनाई दी।" मैं पूछता गया कि मुझे क्या करना चाहिए तो उन्होंने कहा : "उपवास करना चाहिए।" मैंने कहा : "कितने दिन का उपवास करना चाहिए ?" तो उन्होंने कहा : "इक्कीस दिन।" यानी इसमें कोई पूछनेवाला था और दूसरा जवाब देनेवाला। बिलकुल कृष्णार्जुन जैसा संवाद था। बापू तो सत्यवादी थे, इसलिए कोई भ्रम नहीं हो सकता। उन्होंने कहा : "मुझे साक्षात् ईश्वर ने यह बात कही।" फिर मैंने पूछा : "क्या ईश्वर का रूप हो सकता है ?" वे बोले : "रूप तो नहीं हो सकता, लेकिन मुझे आवाज सुनाई दी।" इस पर मैंने कहा : "रूप अनित्य है तो आवाज भी अनित्य है। अगर आवाज सुनाई दी तो रूप कैसे नहीं दिखाई दिया ?" फिर मैंने उनके सामने कुछ जानकारी रखी। दुनिया भर के आत्मिक अनुभव और अपने भी अनुभव रखते हुए कहा कि "ईश्वर दर्शन कैसे नहीं दे सकता ? आपके मन में सवाल-जवाब हुए। उसका ईश्वर के साथ ताल्लुक है न ?" उन्होंने कहा : "हाँ, उसके साथ ताल्लुक है। मैंने आवाज सुनी, लेकिन मुझे दर्शन नहीं हुआ। मैंने रूप नहीं देखा। उसका शब्द मैंने सुना। लेकिन उसका रूप है, इसका मुझे अनुभव नहीं हुआ, मुझे साक्षात् दर्शन नहीं हुआ। लेकिन वैसा दर्शन हो सकता है।"

सब ऊपर-ऊपर चलता है

यह सारा मैंने इसलिए खोला कि हम जीवन की गहराई में नहीं जाते और ऊपर के स्तर में काम चलाते हैं। मैं इसकी ओर ध्यान खींचना चाहता हूँ। मैं बार-बार कहता हूँ कि गांधीजी ने राजनीति नहीं चलायी थी। उन्होंने जो कुछ काम किया,

वह लोक-नीति थी; क्योंकि वे जनता को खड़ा करने की कोशिश करते थे। स्वराज्यप्राप्ति के पहले जो काम हुआ, वह लोक-नीति ही थी, राजनीति नहीं। उनके कुछ साथी राजनीति चलाते हैं। वे पुरानी राजनीति नहीं चलाते। उनमें और दूसरे राज-नीतिज्ञों में कुछ फर्क है, लेकिन बहुत फर्क नहीं। इस तरह कुछ साथी राजनीति में गये और दूसरे चर्मालय, खादी में गये हैं। यह सारा इतना स्थूल काम है कि जिन मनुष्यों को हम साथ रखते हैं, उनको लाचारी से साथ रखते हैं। कर्मप्रधान होकर उनका संग्रह करते हैं और फिर कोशिश करते हैं कि उन्हें सिद्धान्तों का स्पर्श हो। लेकिन हम ऐसी कोशिश नहीं करते कि जिन्हें ऐसे विचार मान्य हों, वे कर्मनिरपेक्ष होकर इकट्ठा हों और कर्म की जरूरत मालूम होने पर कर्म शुरू करें। आध्यात्मिक निष्ठा से ५-६ भाई इकट्ठा आयें और फिर कर्म शुरू करें, यह करने के बजाय हम पहले कर्म लेते हैं, फिर मनुष्य ढूँढ़ते हैं। यानी सब काम कर्मप्रधान होता है। इसीसे मैं परेशान हूँ। मैं सचाई के साथ यह नहीं कह सकता कि ईश्वर के अस्तित्व का भान न होता तो मैं इसमें पड़ता। मुझे यह कहना ही पड़ता है कि ईश्वर का दर्शन होता है, साक्षात्कार होता है, स्पर्श होता है, अन्यथा विकारों का विनाश नहीं हो सकता। यह संभव नहीं कि उसके दर्शन के बिना काम चलता रहे। वैसे मैं नास्तिकों को भी हजम कर लेता हूँ। जहाँ तक सामाजिक स्थूल-कार्य का सम्बन्ध है, नास्तिक भी चल सकता है। परमेश्वर का नास्तिक भी एक रूप है, यह कहकर मैं नास्तिक को भी हजम कर लेता हूँ जिससे मैं ऊँचा चढ़ता हूँ—मेरी प्रगति होती है। इस तरह मैं तो बहुत ऊँचा चढ़ूँगा, लेकिन वह मुझे हजम नहीं कर पायेगा। उसकी गति कुंठित होगी।

सत्याग्रह का शस्त्र

मेरे सामने सवाल है कि क्या सत्याग्रह कोई शक्ति है? अपने सारे काम का सारभूत शब्द अगर कोई है तो वह सत्याग्रह ही है। वैसे यह शब्द मुझे उतना पसन्द नहीं है, क्योंकि उसमें जो 'आग्रह' शब्द है, वह गलत है। फिर भी वह शब्द चल पड़ा है, इसलिए लेता हूँ। अब मेरे सामने यह सवाल है कि आणविक शस्त्र के जमाने में सत्याग्रह का रूप क्या होगा? आणविक शस्त्र-वालों के पास एक व्यापक औजार आया है, जिससे वे घर बैठे दुनिया के वातावरण को बिगाड़ सकते हैं, दुनिया को खत्म कर सकते हैं। लेकिन हमारे पास ऐसी कोई शक्ति नहीं आयी, जिससे हम दुनिया का वातावरण निर्मल कर सकें। ऐसी शक्ति हाथ में आनी चाहिए। अभी तक यह चलता था कि सामनेवाला मेरी आँख की तरफ देखेगा, मेरी जबान सुनेगा, तो मेरी दृष्टि और शब्दों का उस पर असर होगा। लेकिन अब तो दर्शन और शब्द की कोई बात ही नहीं है। घर बैठकर भी बम फेंका जा सकता है। उसके सामने सत्याग्रह नहीं चलेगा। ऐसी हालत में सत्याग्रह का क्या रूप होगा, इस पर हमें सोचना चाहिए। गांधीजी के जाने के बाद हिन्दुस्तान में सत्याग्रह के जो प्रकार चले, उनमें एक उपवास भी है। लेकिन कहीं उपवास शुरू होता है तो मुझ पर भी पहली प्रतिक्रिया यही होती है कि कुछ गलत काम शुरू हुआ है। वैसे केलप्पनजी जैसों का उपवास होता है तो अनुकूल प्रतिक्रिया होती है। लेकिन इन दिनों उपवास का स्वरूप ऐसा बना है कि उसके बारे में सुनते ही प्रथम प्रतिक्रिया यही होती है कि कुछ गलत काम हुआ। इस तरह हमने सत्याग्रह का इतना अशुद्धिकरण कर डाला है। गांधीजी की भूमिका में जो सत्याग्रह चलता था, हम उसे उससे नीचे ले गये हैं। वैसे उस भूमिका का सत्याग्रह भी इस जमाने में नहीं चल सकता। परन्तु उसे ऊपर ले जाने के बजाय हमने उसकी शक्ति और भी क्षीण किया कर डाली है। सत्याग्रह अड़ंगा या दबाव डालने की बात बन गयी है। चाहे वह सौम्यतर हो तो भी एक दबाव की ही बात बन गयी है। लेकिन विज्ञान के सामने आपका दबाव कहाँ रहेगा?

तालीम तंत्र नहीं, मंत्र बने

मैं यह सारा चिंतन करता हूँ तो मुझे लगता है कि हमारा उद्योग के जरिये तालीम देने का विचार बिलकुल ही स्थूल है। मैंने पहले भी कहा था कि नयी तालीम का ध्येय है—गुण-विकास, न कि केवल उद्योग के जरिये पढ़ाना। पुस्तकों के जरिये पढ़ाना एकांगी है। लेकिन हमारा मूल उद्देश्य है गुण-विकास। फिर उसके लिए आजीविका की दृष्टि से उद्योग की तालीम; मानसिक विकास के लिए चिंतन, ध्यान, भक्ति, उपासना आदि सब आता है। अगर मूल उद्देश्य आत्म-विकास, गुण-विकास न रहा तो नयी तालीम भी एक 'टेक्निक' बन जायगा, जैसा कि फ्रोबेल, मान्टेसरी आदि बने हैं। मुझसे पूछा जाता है कि मांटेसरी की पद्धति और आपकी पद्धति में क्या फर्क है? मांटेसरी का एक खेल-सा चलता है। मैं यह नहीं कहना चाहता कि वह निकम्मी चीज है। उसने भी काफी खोज की है। परन्तु गांधीजी ने हमसे कहा था कि बच्चा माँ के पेट में आता है, तब से लेकर श्मशान तक का पूरा जीवन नयी तालीम है। इसलिए अगर हम नयी तालीम का एक तंत्र बनायेंगे, जैसा कि सरकार का बनता है तो हम शुष्क बनेंगे। फिर तंत्र ही तंत्र रह जायगा, उसमें से मंत्र खत्म हो जायगा।

मैं अपने से असंतुष्ट

यह सारा देखकर मेरा जी घबड़ा उठता है। इन दिनों कभी-कभी मैं कठोर बोलता हूँ, जैसा कि अकसर नहीं बोलता था। इसका कारण यह है कि मैं अपने से असंतुष्ट हूँ। मेरी यात्रा चलती है, उससे भी मैं असंतुष्ट हूँ। जब से ब्रह्मविद्या-मंदिर का आरम्भ हुआ, तभीसे मुझे लगता है कि मेरी यात्रा भी ब्रह्मविद्या-मन्दिर होनी चाहिए। परन्तु नहीं होती। लोगों में इतनी उदारता है कि उन पर साधुत्व का असर तो होता ही है, पर साधुत्व के ढोंग का भी असर होता है। साधुत्व का ढोंग होने पर भी वे इतने उदार होते हैं कि उससे भी कुछ-न-कुछ पाते ही हैं। कुछ लोगों का तो सिर्फ साधु का वेश ही होता है। फिर हमने कुछ-न-कुछ तपस्या की ही है और कुछ बापू का नाम भी साथ है। इसलिए हमारा कुछ-न-कुछ असर हो ही जाता है। फिर भी आज हमारे चित्त में बेचैनी है और आगे सत्याग्रह का चिंतन करने में रुकावट पैदा हो रही है। मैंने अपने साथियों से कहा कि हमारी यात्रा का जनता पर कुछ भी असर हो। लेकिन मैं जब ध्यान करने बैठता हूँ तो उसमें जो दर्शन होना चाहिए, वह नहीं होता। इससे मैं व्याकुल हो उठता हूँ। लोग मेरी यात्रा पर जो टीका करते हैं, वह बिलकुल सौम्य है। मैं स्वयं अपने पर उससे बहुत ज्यादा टीका करता हूँ। मैंने देखा कि यहाँ गाँव-गाँव में लोगों ने बहुत बड़ी तादाद में शान्ति-सेना में नाम दिये, दान भी दिये। लोगों ने हमसे यह कहा कि आपकी जो यात्रा चल रही है, इस प्रकार की यात्रा कश्मीर में पहले शंकराचार्य ने ही की थी। जब लोगों ने यह कहा तो मुझ पर बहुत बोझ आ गया। वैसे यहाँ और भी कई यात्री आये होंगे, परन्तु एक सामाजिक मिशन और आध्यात्मिक क्रान्ति की बात लेकर जन-समाज तक पहुँचनेवाली ऐसी यात्रा पहले शंकराचार्य की ही हुई थी। उसका स्मरणकर लोग मेरी तुलना उनके साथ करते हैं तो मुझपर बहुत बड़ा बोझ आ जाता है। उनकी मूर्ति मेरे

सामने खड़ी हो जाती है और लगता है कि वे मेरे बारे में क्या सोचते होंगे। मैं मन में कल्पना करता हूँ कि उनकी यात्रा किस तरह चलती होगी। यह ठीक है कि जमाना बदला है और विज्ञान के जमाने में नये औजार लेना ठीक है। बिलकुल उनके जैसे पुराने ढंग से यात्रा करना ठीक नहीं है। लेकिन उनकी यात्रा तो एक ब्रह्मविद्या की यात्रा थी। इसलिए आज मैं मन में अपने लिए ही असंतुष्ट हूँ। मेरे मन में अपने लिए जो चिढ़ है, वही मैं कभी-कभी दूसरों पर निकालता रहता हूँ।

तालीम के तीन काम

मेरा कहना यह है कि हमारे सब काम एक बुनियादी फर्क माँगते हैं। जब मैं इसपर सोचता हूँ तो मुझे लगता है कि कम-से-कम बात यह है कि तालीमी संघ और सर्व-सेवा-संघ एक बनें। वस्तुतः इससे बहुत अधिक होने की जरूरत है; लेकिन हम इतना भी करते हैं तो इसके बाद आगे क्या करना है, यह अपने आप सूझेगा। खुशी की बात है कि दोनों एक हो रहे हैं।

जो ग्रामदानी गाँव मिले हैं, उनमें से कुछ हमें चुनने चाहिए और वहाँ पूर्ण प्रयोग करने चाहिए। हमने माना है कि ऐसे प्रयोगों में नयी तालीम का स्वरूप क्या हो, इस पर सोचना होगा। अक्राणी-महाल में सरकार की तरफ से एक योजना चलती है। सरकार के और हमारे कार्यकर्ताओं के बीच सहयोग चलता है। प्रो० बंग ने मुझे लिखा है कि सरकार चाहती है कि तालीम का काम हम उठायें और हमने उसे मान्य भी किया है। वैसे वहाँ की हालत तो बिलकुल पिछड़ी हुई है। वहाँ के लोग राम और कृष्ण का भी नाम नहीं जानते। अब वहाँ नयी तालीम के व्यापक प्रमाण का क्या रूप होगा, यही हमें बताना होगा। हमारे कार्यक्रम का दूसरा अंग होगा—शान्ति-सेना को खड़ा करना। उसके वास्ते तालीम कीज रूरत है। शान्ति-सेना का कुल काम नयी तालीम का काम है। यों समझकर हम उसे उठायें तो एक बहुत बड़ी जमात हमारे लिए अनुकूल होगी। तीसरी बात यह है कि हमारे जितने काम चलते हैं, उनमें इस विचार का प्रवेश कैसे हो, इसपर हमें सोचना होगा। ये तीन मुख्य बातें हैं। उसके साथ-साथ राष्ट्रीय पैमाने पर तालीम को क्या रूप देना, इसपर भी सोचना होगा और कुल राष्ट्र को उसके लिए अनुकूल बनाना होगा। मैंने जो ब्रह्मविद्या की बात कही, उसका कोई कार्यक्रम नहीं बन सकता। परन्तु सोचने पर हमें कुछ-न-कुछ तो अवश्य सूझेगा।

हमारा काम क्या होगा ?

देश में जो तालीम के जानकार हैं, उनके पास मानस-शास्त्र, समाज-शास्त्र का ज्ञान है। तालीम का सम्बन्ध वे समाज-शास्त्र और आर्थिक ढाँचे के साथ जोड़ते हैं। इसलिए हम अपनी परिभाषा को बदलें और आज के समाज के लिए अच्छी तालीम कैसी होनी चाहिए, इसके उसूल पेश करें। हमने अब तक काफी प्रयोग किये और दिशा बतायी। इसलिए अब प्रयोग करने हों तो वे ही करें, लेकिन हम तालीम के मूलभूत विचार लोगों के सामने रखते जायँ। मैंने सोचा है कि खास कर जहाँ-जहाँ तालीमी मरकज हो, वहाँ मैं लोगों के सामने तालीम का दर्शन रखूँ। आज देश को इन चीजों की आवश्यकता है और हमें उसे इस दिशा में ले जाना होगा। फिर पाठ्य-पुस्तक आदि की बातें वे तय करें। लेकिन कुछ बुनियादी बातें हमें ही बतानी होंगी। हमने बुनियादी तालीम का एक ढाँचा बनाया है। आज जो चलता है, वह उससे कमजोर है या अच्छा, यह अलग बात है। फिर भी वह एक ढाँचा है। तालीम को हम ढाँचे से बाहर निकालें और मूल विचार लोगों के सामने रख दें।

इस तरह हमने तीन बातें करने की सोची हैं। ग्रामदानी गाँवों में प्रयोग, शांति-सेना खड़ी करना और अपनी सब संस्थाओं को नयी तालीम का रूप देना। हम इतना करेंगे तो सरकार को भी आकर्षण होगा। आज हम शांति-सेना का कुछ रूप दिखाते हैं, ग्रामदानी गाँव में उत्पादन बढ़ाते हैं, शहरों की तरफ जानेवाली लोगों की बाढ़ रोकते हैं, गाँव की अच्छाइयाँ बढ़ाते और बुराइयाँ रोकते हैं तो सबका असर सरकार पर अवश्य होगा। आज हमारे जो रचनात्मक काम चल रहे हैं, ये अधिक दिनों तक नहीं चलेंगे। सरकार की मदद आगे नहीं मिलेगी। इसलिए उनका रूपान्तर कर हम दूसरा रूप खड़ा करें तो सरकार पर उसका असर होगा। अब सरकार को बेकारों को काम देने की जिम्मेवारी उठानी होगी, या उन्हें खिलाना होगा। जब सरकार वह जिम्मेदारी उठाने का तय करेगी, तब आपके ग्राम-स्वराज्य का उसे आकर्षण न हो तो भी मजबूर होकर एक 'रेसिड्यूअरी एम्प्लायमेंट' के तौर पर वह आपकी कुछ चीजें कबूल करेगी। वैसे जन-संख्या बढ़ रही है तो आपकी दरिद्रता कम नहीं होनेवाली है। इसलिए आप खादी के जरिये कुछ कर के दिखाते हैं, ग्राम-संकल्प और ग्राम-स्वावलम्बन के आधार पर कुछ गाँव में चरखे चलाते हैं तो वह भी आकर्षण होगा। उसके साथ-साथ अच्छी तालीम की जानकारी भी देते जायँ, तो ठीक होगा।

♦♦♦

मांडली (कश्मीर) २९-५-'५९

स्वागत प्रवचन

मानव पर भरोसा ही सर्वोदय का शस्त्र

आज रास्ते में एक भाई ने सवाल पूछा कि "सर्वोदय में तो आप मान लेते हैं कि इन्सान का स्वभाव अच्छा है, लेकिन मनुष्य में काफी खराबियाँ हैं। जब तक खराबियाँ नहीं मिटतीं, तब तक सर्वोदय के लिए अनुकूल वातावरण नहीं मिलता। ऐसी हालत में समाजवाद, साम्यवाद या दूसरा कोई वाद चलता ही रहेगा। उसके बाद जब इन्सान का स्वभाव अच्छा बनेगा, तभी सर्वोदय आयेगा। तब तक आप घूमते रहिये और लोगों को समझाते रहिये, जैसा कि पुराने संतों ने किया था। परन्तु बात तभी बनेगी, जब मनुष्य का स्वभाव बदलेगा। वह होने में कितनी देर लगेगी, पता नहीं।"

मानव का स्वभाव आज भी अच्छा

इसपर मेरा कहना यही है कि हम मानते हैं कि मनुष्य का स्वभाव आज भी अच्छा है, उसे अच्छा बनाना बाकी नहीं है। फिर भी उसमें कोई दोष नहीं, ऐसी बात नहीं। दोष तो हैं और उन्हें हमें हटाना ही पड़ेगा तथा वे धीरे-धीरे हटेंगे भी। हर बच्चा सहज स्वभाव से सच ही बोलता है। झूठ नहीं बोलता, ऐसी बात नहीं। बच्चा स्वभाव से ही सब पर प्यार करता है, घरवालों पर और पड़ोसियों पर भी विश्वास करता है। इस तरह भलाई, नेकी, सच्चाई आदि सभी चीजें मनुष्य के स्वभाव में ही हैं। इसीलिए मनुष्य का स्वभाव बदलने का कोई सवाल नहीं है।

कायमुल् अक्ल जरूरी

फिर भी एक बात अवश्य है। आज विज्ञान का जमाना आ गया है, जिसके कारण उपयोग की चीजें, सहूलियत की चीजें

बहुत बढ़ गयी हैं। पुराने जमाने में लाउड स्पीकर नहीं था, इसलिए हजारों लोगों के सामने बोलने का मौका आने पर मुश्किल हो जाती थी। जैसे आज के नेताओं की सभाओं में हजारों लोग सुनने के लिए आते हैं, वैसे बुद्ध भगवान की सभाओं में न आते होंगे। बुद्ध के दर्शन के लिए हजारों लोग आते होंगे, परन्तु उनका उपदेश सुनने के लिए तो ५०-६० ही आते होंगे। फिर बुद्ध भगवान चिल्लाकर तो बोलते न होंगे, शांति से ही बोलते होंगे। इन दिनों औजार बहुत बढ़ गये हैं। ऐनक न हो तो हम बहुत दूर का नहीं देख सकते। फाउण्टेनपेन हो तो सतत लिखते ही चले जायँगे, दावात साथ रखने की जरूरत नहीं। रेकार्डिंग-मशीन हमारा हर शब्द पकड़ लेती है और बाद में सारा व्याख्यान सुनाती है, ताकि हम मुकर नहीं सकते कि हमने फलानी बात नहीं कही थी। यह सारी मशीन-युग की कीमिया है। जब कि इस तरह की चीजें बहुत बढ़ी हैं, ऐसी हालत में मनुष्य के लिए यह जरूरी है कि वह अपने पर जब्त रखने के गुण का विकास करे। अब लाखों लोगों को अपनी बात सुनानी होती है तो यह जरूरी है कि हमारी जबान से कोई गलत शब्द न निकले। जब लाउड स्पीकर नहीं था और १०-२० लोग ही बात सुनते थे, तब कोई गलत शब्द निकलने पर भी उतना नुकसान नहीं होता था। लेकिन आज गलत शब्द निकलेगा तो अनर्थ हो जायगा। इसलिए आज जबान पर काबू रखने की जरूरत पैदा हुई है। इसी तरह इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि पर भी काबू रखने की जरूरत पैदा हुई है। इस विज्ञान-युग में मनुष्य को अपना दिमाग मजबूत बनाना चाहिए, बुद्धि स्थिर—कायम रखनी चाहिए। 'कायमुल् अक्ल' जिसकी अक्ल कायम है, ऐसा बनना चाहिए। उसीको 'स्थितप्रज्ञ' कहते हैं।

युग की माँग : अपने पर नियंत्रण रखें

बाकी मनुष्य का स्वभाव तो अच्छा ही है। अगर हम सर्वोदय-वाले स्वभाव को बदलने की बात करते हैं तो स्वभाव कभी बदलता ही नहीं है। शेर शेर ही रहेगा, वह हिरन के जैसा डरपोक कभी नहीं बनेगा। हिरन हिरन ही रहेगा, वह शेर जैसा बहादुर नहीं बनेगा। इसलिए स्वभाव बदलने की बात होती तो सर्वोदय कभी नहीं आ सकता था, वह नामुमकीन हो जाता। इसलिए समझना चाहिए कि सर्वोदय में स्वभाव बदलने की बात नहीं है। मन, इन्द्रियाँ, बुद्धि आदि पर काबू पाने की जरूरत है। स्कूलों में इसकी तालीम मिलनी चाहिए। अगर इस बात में हम हार गये तो इस विज्ञान-युग में कारगर नहीं होंगे। विज्ञान के जमाने में शस्त्रास्त्र लेकर लड़ना है तो भी दिमाग ठंडा रखना पड़ता है। दिमाग तेज हो जाय तो हारने की नौबत आती है। जनरल का हुक्म हुआ कि पचास कदम पीछे हटो तो हटना ही पड़ता है और आगे बढ़ने का हुक्म होते ही आगे बढ़ना पड़ता है। पहले के जमाने में हम गुस्से से हमला कर सकते थे, डर से भाग सकते थे। लेकिन विज्ञान के जमाने में हुक्म के मुताबिक ही काम करना पड़ता है। इस जमाने में हम न गुस्से से हमला कर सकते हैं, न डर से भाग ही सकते हैं। हाथ में बन्दूक हो तो दिमाग ठंडा रखकर, निशाना बराबर ताककर गोली चलानी पड़ती है। निशाना चूक गया तो मामला खत्म हो जाता है। हवाई जहाज चलाते समय दिमाग तेज रहा तो गलत जगह पहुँचने से दुश्मन का शिकार बनना पड़ता है। इसलिए ठंडे दिमाग से, गणित के साथ, अक्ल कायम रखकर हवाई जहाज चलाना पड़ता है। राजनीतिज्ञों को गुस्सा आये तो भी ठंडे दिमाग से जवाब देना पड़ता है।

अपने पर जब्त रखने के गुण की आज जितनी जरूरत है, उतनी पहले कभी नहीं थी। आज उसके बिना कुछ भी नहीं चलेगा। उसके बिना न हम लड़ाइयाँ लड़ सकते हैं, न शान्ति ही कायम कर सकते हैं। न कोई इन्तजाम कर सकते हैं, न चर्चा और न सलाह मशीवरा ही कर सकते हैं। जिस समाज में उसकी कमी रहेगी, वह समाज इस युग में कभी भी आगे नहीं बढ़ सकता। इस युग में बिलकुल शान्ति से, सब्र से काम करना पड़ता है, केवल क्रोध से तो काम बनता ही नहीं। तौल-तौल कर बोलना पड़ता है, तौल-तौल कर सोचना पड़ता है, तौल-तौल कर काम करना पड़ा है। इस तरह विज्ञान के जमाने में यह एक नयी जरूरत पैदा हुई है, जिसकी तालीम हमें हासिल करनी होगी। बाकी मनुष्य-स्वभाव अच्छा ही है। उसमें किसी प्रकार के परिवर्तन की जरूरत नहीं है।

भरोसे के लाभ

हमारा सब पर विश्वास है। अतः जहाँ हम जाते हैं, भरोसा रखकर माँगते हैं तो लोगों को देना ही पड़ता है। हमने माँगना भी इसी तरह शुरू किया कि आपके घर में पाँच भाई हैं तो हम छठे हैं। हमारा चेहरा देखकर पहचान लो कि हम आपके घर के हकदार हैं या नहीं ? अगर हमारा अधिकार कबूल हो तो हिस्सा दो। हजारों लोगों ने हमें घर का भाई समझकर हिस्सा दिया है। हम भरोसा रखकर और प्रेम से माँगते हैं तो कोई ना नहीं कह सकता। किसीके पास देने के लिए न हो तो वह दुःखी होता है। बच्चा माँ के पास लड्डू माँगता है, तो माँ दिये बिना नहीं रहती। अगर वह न दे सकी तो दुःखी हो जाती है। इसी तरह हम भी बच्चे बनकर पूरे यकीन के साथ माँगते हैं, इसलिए मिलता ही है। यह जो मनुष्य-स्वभाव पर भरोसा है, उसीको हमने अपना शस्त्र बनाया है। उसी शस्त्र से हम लड़ाइयाँ फतह करते हैं। यह भरोसा बहुत बड़ी बात है। उसके बिना सर्वोदय संभव नहीं है। वैसे मनुष्य-स्वभाव में परिवर्तन की जरूरत नहीं है, वह अच्छा ही है।

◆◆◆

आटा घर पर ही पीसिये

आटा घर पर ही पीसिये। माना कि आपके गाँव में मिल है, फिर भी वहाँ न पिसाइये।

आप कहेंगे कि दो ही पैसे में पिसकर मिलता है। लेकिन रोज के दो पैसे जाने का अर्थ है—एक महीने में एक रुपया और बारह महीनों में बारह रुपया।

आपका गाँव अगर ढाई सौ घरों का है तो सालभर में ३००० रुपये चले जायँगे।

दूसरी बात यह होगी कि रोज का आपका व्यायाम चला जायगा।

तीसरी बात यह है मिल का आटा हम छह-छह दिनों तक खाते रहते हैं। हाथ-चक्की पर पीसे हुए ताजे आटे से जो ताकत मिलती है, वह बासी आटे में कहाँ से मिलेगी ?

चौथी बात यह है कि हम आलसी बनेंगे और देरी से उठेंगे। अतः आपसे मेरी प्रार्थना है कि अपने घर के इस उद्योग को न छोड़िये।

◆◆◆

प्रार्थना-प्रवचन ऊधमपुर (कश्मीर) २-६-'५९

तीन आवश्यक कर्तव्य : भेद मिटाओ, बाँटकर खाओ, शान्ति-सैनिक बनो

हमारे साथ 'सच' नाम के अखबार के एक संपादक यात्रा कर रहे हैं। वे कह रहे थे कि 'जहाँ एक कनाल जमीन के लिए एक खून होता है, ऐसी जगह पर लोग सैकड़ों कनाल जमीन दान दे रहे हैं, इसका आश्चर्य मालूम होता है।' यहाँ बाइस एकड़ का सीलिंग बन चुका है तो लोग ऐसे बेवकूफ नहीं हैं कि सरकार के हाथ में जमीन जाने देंगे। इसलिए उन्होंने पहले से ही अपने परिवारवालों में जमीन का बँटवारा कर लिया है। फिर भी सरकार के हाथ में कुछ जमीन तो गयी ही है। हमें अब जो जमीन मिल रही है, वह बाईस एकड़ के अंदर की है इसलिए संपादक महाशय को बड़ा ताज्जुब हो रहा है।

मानव के अन्दर गुणों का खजाना भरा है

दरअसल बात यह है कि इन्सान के दिल के अंदर खजाना भरा है। पैसे का नहीं, गुणों का खजाना, जो उसके दिल की गहराई में है। ऊपर-ऊपर तो बाहर के हालात की वजह से कुछ दोष देखे जाते हैं, जैसे फल के ऊपर के छिलके पर हवा का असर होता है। इसीसे कोई बदमाश दीख पड़ता है, कोई कंजूस तो कोई झूठा। परन्तु मनुष्य-हृदय के अन्दर खोदा जाय तो गुणों का खजाना ही मिलेगा। एक बाप ने मरते समय अपने बच्चों से कहा कि तुम्हारे लिए मैंने खेत के अन्दर इस्टेट रखी है, उसे खोदकर निकालो। बच्चों ने सारा खेत खोद डाला, लेकिन कुछ नहीं मिला। बाद में जब बारिश हुई तो खुदाई के कारण खेत में दस गुना फसल आयी। लड़कों की समझ में आ गया कि बाप ने ठीक ही कहा था कि खेत के अन्दर खजाना भरा है। वैसे ही आप इन्सान के दिल को खोदेंगे तो खजाना मिलेगा।

दिल खोदने की कुदाली 'विश्वास'

दिल खोदने के लिए जिस कुदाली की जरूरत है, उसका नाम है विश्वास। हम सबके हृदय पर विश्वास रखते हैं कि उनके दिल में उदारता है। गरीबों के लिए उनसे प्रेम से माँगा जाय तो वे जरूर देंगे। ऐसे विश्वास से हम उनका हृदय खोदते हैं तो अन्दर से दान निकलता है। हमें ऐसा नहीं लगता कि लोग लोभी हैं, वे कैसे देंगे? अगर हमारे मन में ऐसा आये तो वे नहीं देंगे। 'क्या माँगने से कभी जमीन मिलती है, एक-एक कनाल के लिए खून हो जाता है।' इस तरह हम मानेंगे तो लोग जरूर नहीं देंगे। परन्तु हम विश्वास रखते हैं, हम मानते हैं कि हृदय के अन्दर भगवान छिपे हैं। जरा विश्वास के साथ खोदेंगे तो उनकी मूर्ति बाहर आयेगी। इस तरह हम इन्सानियत पर, इन्सान के हृदय में छिपे हुए भगवान पर विश्वास रखते हैं, इसीलिए वे प्रकट होते हैं।

अज्ञानवश ही हरिजन-परिजन-भेद

हमने सुना है कि यहाँ हरिजनों को दूर रखा जाता है फिर भी हमारा विश्वास कम नहीं हुआ है। हम मानते हैं कि लोगों को किसीने समझाया नहीं, इसीलिए वे हरिजनों को दूर रखते हैं। स्वच्छता, पवित्रता के खयाल से वे ऐसा कर रहे हैं। लेकिन उन्हें अगर समझाया जाय कि यह बात गलत है तो वे प्यार से जैसे अपने बच्चों को गोद में लेते हैं, वैसे ही हरिजनों के बच्चों को भी गोद में लेने को तैयार होंगे। 'क्या ब्राह्मण, क्या हरिजन, किसी के भी घर में बच्चा पैदा हुआ, तो वह भगवान की ही सन्तान है' इस तरह समझाने पर लोग हरिजनों के साथ प्यार से रहेंगे, इसमें मुझे जरा भी संदेह नहीं है। ज्ञान के सामने अज्ञान टिक नहीं सकता। 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।' ज्ञान के समान कोई भी चीज पाक नहीं। जहाँ ज्ञान की रोशनी आयी, वहाँ अज्ञान का अँधेरा टिक ही नहीं सकता। [चालू]

अनुक्रम

१. सुधारवाद क्रान्तिवाद का जानी दुश्मन — पिपलोद २१ अक्तू० '५८ पृष्ठ ५०५
२. ब्रह्मविद्या के विकास से ही हम टिक सकेंगे — जम्मू ८ जून '५९" ५०७
३. मानव पर भरोसा ही सर्वोदय का शस्त्र — मांडली २९ मई '५९" ५१०
४. तीन आवश्यक कर्तव्य.... — ऊधमपुर २ जून '५९" २१५

सच्चा ज्ञान

आठ-दस साल का एक लड़का हाथ में समिधा लेकर—'समिद्पाणि' होकर गुरु के पास गया और उनसे कहा कि मैं ज्ञान के लिए आया हूँ। गुरु उससे कहता है : "ये ४०० गायें चराने का काम करो और यह काम पूरा होने के बाद मेरे पास ज्ञान के लिए आओ। जब तक इन ४०० गायों की १००० गायें नहीं बनेंगी, तब तक यह काम पूरा हुआ, ऐसा नहीं माना जायगा।"

४०० गायों को हजार बनने में १ या १॥ साल लगता, याने उस दस सालके लड़के को १॥ साल की एक योजना दे दी गयी। फिर वह हर रोज गायें चराने के लिए ले जाता था और शाम को गुरु के पास आकर प्रार्थना करता था। गुरु उसे प्रेम से खिलाते-पिलाते थे। १॥ साल के बाद उन्होंने शिष्य की ओर देखा और पूछा : "तेरा चेहरा तेजस्विता से चमक रहा है। क्यों रे, तुझे कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ-सा दीखता है?"

शिष्य ने कहा : "ज्ञान तो गुरु से ही प्राप्त होता है। वह तो मुझे आपकी कृपा से ही मिलेगा।" गुरु ने फिर पूछा, यह बात तो ठीक है। परन्तु तेरे चेहरे पर ज्ञान की चमक दीखती है। क्या तुझे किसीने कुछ ज्ञान दिया?"

शिष्य ने कहा : "अन्ये मनुष्येभ्यः इति", अर्थात् मुझे मनुष्यों ने नहीं, दूसरों ने ज्ञान दिया। उसे बैल ने कुछ ज्ञान दिया, हंस ने दिया, अग्नि ने दिया और मद्गु नाम के पक्षी ने दिया। उन चारों ने क्या ज्ञान दिया, यह सब उपनिषदों में लिख रखा है।

गुरु ने कहा : "तुझे जो ज्ञान मिला है, वह बहुत अच्छा है।" फिर उसकी पूर्ति में जो कहना था, वह गुरु ने कहा।

उपनिषदों के गुरु विद्यार्थियों को ऊँची दीवालों के अन्दर नहीं रखते थे, जिससे उनकी नजर बाहर न जाय।

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता : गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१ तार : 'सर्व-सेवा' वाराणसी